

विवेकानन्द की मानव निर्माण की शिक्षा का संक्षिप्त अध्ययन

वन्दना पाण्डे

शोधार्थी

जे0 जे0 टी0 विश्वविद्यालय

राजस्थान

प्रस्तावना

परिवर्तन प्रकृति का अटूट नियम है। प्रकृति प्रदत्त भौतिक एवं मूर्त वस्तुएं तो परिवर्तित होती ही रहती हैं साथ-साथ मानव के विचार, दृष्टिकोण, चिंतन एवं दर्शन भी परिवर्तित होते हैं। दर्शन का इतिहास इस परम् सत्य का साक्षी है कि मानवीय समस्याओं के साथ-साथ उनसे सम्बन्धित दार्शनिक विवेचन भी बदलते रहे हैं। इन परिवर्तनों ने नई परिस्थितियों से उत्पन्न चुनौतियों का सामना करने में मनुष्यों की सहायता की है। निसन्देह एक दार्शनिक के खोज का विषय सत्य का उद्घाटन है। अरविन्द के अनुसार “एक बार पहचाने गये सत्य को हमारे आन्तरिक जीवन और बाहरी क्रियाओं में साक्षात्कार के योग्य होना चाहिए। यदि वह ऐसा नहीं है तो उसका बौद्धिक महत्व तो हो सकता है परन्तु सर्वांग महत्व नहीं हो सकता।” समकालीन युग में मानववादी दर्शन ने भी मानव जीवन के सभी क्षेत्रों को प्रभावित किया है। जान डीवी के शब्दों में— “दर्शन संस्कृति में परिवर्तन करता है। भावी चिन्तन और कर्म के प्रतिमान निश्चित करके वह सभ्यता के इतिहास में सार्थक और परिवर्तनशील योगदान देता रहता है।

यह कहना उचित होगा कि हर दर्शन पर उस परम्परा की अमिट छाप होती है जिसमें वह जन्म लेता है। यही कारण है कि ब्रिटिश दर्शन सामान्यतः आनुभविक है तथा अमेरिका का दर्शन वास्तववादी तथा उपयोगितावादी है। फ्रांस का दर्शन सामान्यतः बुद्धिवादी है तो जर्मनी का दर्शन परिकल्पनात्मक है। इस दृष्टिकोण से भारतीय दर्शन को ध्यान- चिन्तन केन्द्रित कहा जा सकता है। यह आत्म तथा प्रकृति में निहित शक्तियों पर ध्यान केन्द्रित कर चिन्तन करता है। साधारणतः भारतीय दर्शन को आध्यात्मिक कहा जाता है। ऐसा कहने का तात्पर्य यही है कि इसमें ब्रह्म से मूल्यों पर बल दिया जाता है जो परात्ममूलक तथा पारलौकिक है। परन्तु भारतीय दर्शन की यह व्याख्या उपयुक्त नहीं है क्योंकि इस व्याख्या से सांसारिक मूल्यों की सर्वथा उपेक्षा होती है। कम से कम समकालीन भारतीय दर्शन के सम्बन्ध में ऐसा कहना बिल्कुल ही अनुचित होगा। इतना जरूर कहा जा सकता है कि प्राचीन भारतीय दर्शन जीवन सम्बन्धी एक निराशापूर्ण दृष्टि पर आधारित रहा है। इसका विश्वास रहा है कि जीवन का अर्थ दुःख है, तथा धर्म एवं दर्शन का लक्ष्य इस दुःख से मुक्ति पाना है। समकालीन भारतीय चिंतक भी दुःख की वास्तविकता को पहचानते हैं, स्वीकारते हैं तथा दुःख से मुक्ति की बात भी करते हैं, फिर भी उनके विचार का ढंग प्राचीन विचारकों से भिन्न है। इन लोगों ने जीवन में एक अर्थ देखा है, एक प्रयोजन देखा है तथा लौकिक जीवन को भी आध्यात्मिक विकास की एक कड़ी के रूप में समझने का प्रयास किया है।

समकालीन भारतीय दार्शनिकों में कुछ बातें जिनके सम्बन्ध में लगभग सभी एकमत नजर आते हैं, वे हैं— एकवाद, जगत की वास्तविकता, मानव का संगठित स्वरूप, मनुष्यत्व की गरिमा, मानव स्वतंत्रता की वास्तविकता, अन्तर्दृष्टि का महत्व आदि। स्वामी विवेकानन्द, सर्वपल्ली राधाकृष्णन, महात्मा गांधी, श्री अरविन्द तथा रविन्द्र नाथ टैगोर जैसे सभी विचारकों की तात्त्विक दृष्टि एकवादी है। इसी प्रकार इन सबों ने जगत की वास्तविकता को स्वीकारा है तथा मनुष्य की गरिमा पर बल दिया है। वे सभी स्वीकारते हैं कि जीवन के आदर्श की प्राप्ति इस सीमित जीवन के परे जाने में है। पुनः वे सभी इस विचार में भी सहमत हैं कि सत् का यथार्थ ज्ञान किसी अन्तर्दृष्टि से ही सम्भव है। इस प्रकार हम देखते हैं कि समकालीन भारतीय चिन्तकों का विश्वास है कि दर्शन जीवन के साथ अनिवार्य रूप में बंधा हुआ है। समकालीन भारतीय चिन्तक पाश्चात्य दार्शनिकों के करीब नजर आते हैं लेकिन कई अर्थों में भिन्न हैं। वे पाश्चात्य विचारकों के भावात्मक दावे को तो महत्व देते हैं, किन्तु उनकी निषेधात्मक मान्यताओं को नहीं स्वीकारते। वे यह मानते हैं कि दार्शनिक चिन्तन का एक कार्य भावों-विचारों का स्पष्टीकरण है। किन्तु उनका कहना है कि यह कार्य ही एक जगत-दृष्टि के उत्पन्न होने का आधार बन जाता है।

समकालीन भारतीय दार्शनिकों की सबसे बड़ी विशेषता है उनके दृष्टिकोण का मानववादी होना। ये सभी किसी न किसी रूप में मानववादी हैं। यह सत्य है कि विभिन्न विचारकों की लेखनी में मानववाद अपने भिन्न स्वरूप में प्रकट होता रहा है लेकिन मानववाद का एक ऐसा न्यूनतम रूप है जिसकी उपेक्षा हो ही नहीं सकती तथा जिस अर्थ में यह हर विचार से जुड़ा हुआ है।

अपने न्यूनतम अर्थ में मानववाद का कहना है कि कोई भी विचार या व्याख्या मानव से असम्बद्ध रह ही नहीं सकता। यह एक स्पष्ट सत्य है तथा इसके सम्बन्ध में कोई मतभेद संभव ही नहीं है।

विवेकानन्द की मानव निर्माण की शिक्षा

विवेकानन्द का जन्म कलकत्ता के एक सम्पन्न परिवार में 12 जनवरी, 1863 में हुआ था। उनके शैशव काल में कोई ऐसी महत्वपूर्ण घटना तो नहीं घटी थी जिसका प्रभाव उनके पूर्ण जीवन पर अमिट बना रहता। किन्तु, उनकी प्रारम्भिक शिक्षा के विषय में यह कहा जा सकता है कि एक दृष्टि से वह सर्वांगीण-शिक्षा थी। उनका ध्यान जिस ढंग से मानसिक एवं वैचारिक प्रगति की ओर रहा, उसी रूप में उनका ध्यान शारीरिक विकास के प्रति भी रहा। उन्होंने संगीत, साहित्य आदि के क्षेत्र में तो दक्षता प्राप्त की ही, साथ ही साथ तैराकी, घुड़सवारी, कुश्ती आदि में भी प्रवीणता प्राप्त की।

1886 में स्वामी रामकृष्ण परमहंस के निधन के बाद उन्होंने अपने जीवन एवं कार्यों को नया मोड़ दिया। पहले तो उन्होंने सम्पूर्ण देश की विस्तृत यात्रा की, तथा इस प्रकार देश की वर्तमान सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों की जानकारी प्राप्त की। उन्होंने देखा कि देश की समृद्ध संस्कृति तथा आध्यात्मिक परम्परा की जकड़ तो भारतीय जनमानस पर प्रबल एवं सुदृढ़ थी, किन्तु उन्होंने यह भी देखा कि देश में गरीबी, निर्धनता, दरिद्रता तथा उनके कारण उत्पन्न सामाजिक बुराईयां एवं निर्बलता भी व्यापक रूप से विद्यमान थीं। उन्होंने समझा कि आध्यात्मिक प्रगति तब तक सम्भव नहीं होती जब तक भौतिक स्तर की कमजोरियाँ दूर न हों। अतः उन्होंने एक व्यापक आध्यात्मिक क्रान्ति की आवश्यकता समझी, और यह भी समझा कि उसके लिए सबल आध्यात्मिक नेतृत्व की भी आवश्यकता है। फलतः उन्होंने इसी दिशा में अपने योगदान का निश्चय किया।

विदेशों में भी उन्होंने वृहत् यात्रायें कीं, तथा वहाँ की अच्छी बातों को जानने, सीखने का प्रयास किया। वहाँ से वापस आने पर स्वामी विवेकानन्द एक प्रमुख विचारक तथा भारतीय आध्यात्मिकता के प्रमुख चिन्तक के रूप में प्रतिष्ठित हुये। अब उन्होंने कलकत्ता के निकट बेलूर में स्वामी रामकृष्ण आश्रम की स्थापना की, तथा उस आश्रम के माध्यम से जनकल्याण, सेवा तथा सामाजिक सुधार का कार्य बड़े मनोयोग एवं लगन से प्रारम्भ किया। 1899 में उन्होंने पुनः पश्चिम की यात्रा की तथा भारतीय आध्यात्मिकता का संदेश विदेशों में भी फैलाया। 4 जुलाई, 1902 को उनका निधन हुआ, किन्तु उन्होंने स्वामी रामकृष्ण आश्रम, तथा उस आश्रम में सेवा-व्रत लेने वाले अनेक सन्यासियों की परम्परा इस रूप में स्थापित कर दी, कि सेवा, सामाजिक सुधार तथा आध्यात्मिक चिन्तन की सरिता तब से सतत् प्रवाहित है।

विवेकानन्द की दार्शनिक पृष्ठभूमि

स्वामी विवेकानन्द ने भारत के जन समुदाय की सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक परिस्थितियों को निकट से देखा तथा समझा था। इस जानकारी की पृष्ठभूमि में ही उनके दार्शनिक चिन्तन का विकास हुआ था। उन्होंने यह भी स्पष्ट रूप से देखा था कि समाज की कुरीतियाँ समाज में फैले अंधविश्वास एवं बौद्धिक रूढ़िवाद के कारण ही उत्पन्न होती हैं। अतः उन्होंने समझा कि समय की मांग के अनुरूप इस प्रकार का आध्यात्मिक जागरण अनिवार्य है जहाँ आध्यात्मिकता की सही समझ उत्पन्न हो, तथा आध्यात्मिक मूल्यों के प्रति आस्था जाग सके। इसके लिये उन्होंने विभिन्न धर्मों में निहित आध्यात्मिकता के अंशों को समझने-परखने का प्रयास किया, तथा ऐसी विचारधाराओं को मान्यता दी जिनमें आध्यात्मिक मूल्यों को मान्यता दी गई थी।

वेदान्त के अतिरिक्त उनके विचारों पर बौद्ध दर्शन का प्रभाव भी स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। विवेकानन्द के विचारों में कम से कम तीन बिन्दु ऐसे हैं जिनके ऊपर बौद्ध दर्शन का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। इस संदर्भ में सर्वप्रथम तथा सर्वाधिक महत्वपूर्ण विचार विवेकानन्द का 'सर्वमुक्ति' विचार है। इस विचार में महायान बौद्ध विचार-विशेषतया बोधिसत्व विचार से सादृश्यता स्पष्ट रूप में दिखाई देती है। पुनः कहा जा सकता है कि विवेकानन्द बौद्ध दर्शन के उस प्रकार के विचार से स्पष्टतः प्रभावित प्रतीत होते हैं, जहाँ कहा गया है कि जिस नाव की सहायता से आंधी में कोई नदी पार कर लेता है, उसे उस नाव को इस प्रकार छोड़ना चाहिये कि अन्य भी उसका उपयोग कर सकें। स्वामी विवेकानन्द इस प्रकार परार्थमूलक, मानवीय कार्यों के मूल्यों का बड़ा महत्व देते हैं, तथा इसी प्रकार के प्रभाव में अपनी आध्यात्मिक कार्य-प्रणाली में सेवा कार्य को प्रमुख बना देते हैं। यहाँ यह भी कहा जा सकता है कि प्राचीन बौद्ध विचार में अनुशंसित 'सम्यक कर्मान्त' तथा सम्यक 'आजीव' जैसे कार्य से भी विवेकानन्द स्पष्टतः प्रभावित प्रतीत होते हैं।

इन भारतीय विचारधाराओं के अतिरिक्त उनके विचार पर एक प्रमुख प्रभाव ईसाई धर्म का है। विवेकानन्द ने सदा चारित्रिक-बल को बड़ा महत्व दिया है। इसी के अनुरूप सलीब पर टंगे ईसा की आत्मशक्ति तथा चरित्र-बल से विवेकानन्द बड़े प्रभावित प्रतीत होते हैं। ईसा का वह रूप उन्हें प्रबल आध्यात्मिक शक्ति का सूचक प्रतीत होता है, जहाँ वे भयानक शारीरिक यातना सहते हुये भी ईश्वर से उन लोगों के लिये क्षमा की प्रार्थना करते हैं, जिन लोगों ने उन्हें वह यातना दी थी। रामकृष्ण आश्रम के कार्यों के पीछे

जो सेवा-भाव है वह ईसाई धर्म के इसी प्रभाव का परिणाम है। उसी प्रकार जब विवेकानन्द कहते हैं कि मनुष्य में ईश्वरीय चिंगारी छिपी है, तथा जिस आशावादी ढंग से वे मनुष्य के 'त्राण' की बात करते हैं, उन सभी विचारों में ईसाई धर्म के 'ईश्वरीय राज्य' की अवधारणा साफ झलकती है।

उनके विचारों पर कुछ अन्य प्रभाव भी हैं। एक अवधि में वे ब्रह्मो-समाज के प्रभाव में थे। कहा जाता है कि अन्धविश्वास तथा रूढ़िवादी कुरीतियों के विरुद्ध जो उनका प्रतिवाद है, वह ब्रह्मो-समाज के प्रभाव का प्रतिफल है। ऐसा प्रतीत होता है कि वे दयानन्द सरस्वती के व्यक्तित्व से भी प्रभावित थे। सिद्धान्त के स्तर पर दयानन्द के द्वारा सत् के अनिवर्चनीय रूप की व्याख्या तथा व्यवहार के स्तर पर दयानन्द के द्वारा निर्भयता के गुण को महत्व देना विवेकानन्द के लिये महत्वपूर्ण निर्देश था। विवेकानन्द 'गीता' के बातों का भी उल्लेख बार-बार करते हैं। मूलतः गीता का 'निष्काम कर्म-विचार' विवेकानन्द के लिये बड़ा महत्वपूर्ण रहा है।

स्वामी विवेकानन्द की नस-नस में भारतीयता तथा आध्यात्मिकता कूट-कूट कर भरी हुई थी। अतः उनके शिक्षा-दर्शन का आधार भी भारतीय वेदान्त तथा उपनिषद् ही रहे हैं। वे कहते थे कि प्रत्येक प्राणी में आत्मा विराजमान है, इस आत्मा को पहचानना ही धर्म है। स्वामी विवेकानन्द का अटल विश्वास था कि सभी प्रकार के सामान्य तथा आध्यात्मिक ज्ञान मनुष्य के मन में है। अधिकतर इसकी खोज नहीं हो पाई है। यह ढका ही रह जाता है, लेकिन जब इस पर पड़ा हुआ आवरण उतार दिया जाता है तो हम कहने लगते हैं कि हम सीख रहे हैं।

वैदिक धर्म और दर्शन भिन्नताओं का योग है, स्वामी विवेकानन्द के अनुसार वेदान्त के भी तीन रूप हैं— द्वैत, विशिष्टाद्वैत और अद्वैत। स्वामी जी अद्वैत के समर्थक थे इनके अनुसार द्वैत विशिष्टाद्वैत एवं अद्वैत में कोई अन्तर नहीं है ये तीनों वेदान्त दर्शन के सोपान हैं जिनका अन्तिम लक्ष्य अद्वैत की अनुभूति ही है। इतना ही नहीं अपितु स्वामी जी तो विश्व के सभी धर्मों एवं दर्शनों को अन्त में वेदान्त की ओर झुका बताते थे। धर्म और दर्शन के प्रति स्वामी जी का दृष्टिकोण बड़ा वैज्ञानिक था। उन्होंने स्पष्ट किया कि कला, विज्ञान और धर्म एक ही परम सत्य को व्यक्त करने के तीन भिन्न साधन हैं। एक स्थान पर उन्होंने कहा है— 'जब विज्ञान का शिक्षक यह कहता है कि समस्त वस्तुएं एक ही शक्ति की द्योतक हैं तो क्या आपको ईश्वर की याद नहीं आती है जिसके विषय में उपनिषदों में आपने पढ़ा है।' और यही अद्वैत वेदान्त भी कहता है, अद्वैत वेदान्त को ये सार्वभौमिक विज्ञान धर्म कहते थे। इन्होंने वेदान्त को आधुनिक परिपेक्ष्य में देखने समझने और उसकी वैज्ञानिक व्याख्या करने का स्तुत्य कार्य किया है। यही उनके अद्वैत वेदान्त का नयापन है। और इसी आधार पर इनके दार्शनिक चिन्तन को नव्य वेदान्त कहा जाता है। स्वामी जी के नव्य वेदान्त तत्व को तीन तत्वों अर्थात् तत्व मीमांसा, ज्ञान मीमांसा एवं मूल्य मीमांसा के रूप में समझा जा सकता है।

तत्व मीमांसा:— अद्वैत दर्शन के अनुसार ब्रह्मा इस सृष्टि का आदि तत्व हैं। और वही इस ब्रह्माण्ड की रचना का कर्ता और उपादान कारण हैं। वेदान्तियों का तर्क है कि जिस प्रकार मकड़ी अपने जाले का निर्माण स्वयं करती है और जाला निकालने का पदार्थ अपने अन्दर से निकालती है, ठीक उसी प्रकार ब्रह्म इस ब्रह्माण्ड का निर्माण स्वयं करता है और इसका उपादान कारण भी वह स्वयं ही है। स्वामी विवेकानन्द इस सत्य को स्वीकार करते थे। इस सिद्धान्त के अनुसार संसार के सभी स्थूल पदार्थ और सूक्ष्म आत्माएं ब्रह्म अर्थात् परमात्मा के अंश हैं। दूसरे शब्दों में यह सारा संसार ब्रह्ममय है। प्रश्न उठता है कि इस ब्रह्माण्ड का स्वरूप क्या है? अद्वैतवादियों के अनुसार ब्रह्म एक ऐसी शक्ति है जिसका कोई स्वरूप नहीं है यह निराकार, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक और सर्वज्ञ है। माया के योग से यह साकार ब्रह्म (ईश्वर) का रूप धारण करता है। यह स्थूल इन्द्रिय, ग्राह जगत् और उसके पदार्थ भी उसके साकार रूप हैं। आत्मा के सम्बन्ध में स्वामी जी अद्वैतवादियों के विचार से सहमत हैं। विवेकानन्द के अनुसार— सभी आत्माएं परमात्मा का अंश हैं, और परमात्मा की भांति वे भी अनादि और अन्त हैं। अतः उसके जन्म-मरण का प्रश्न ही नहीं उठता है।' अद्वैत के अनुसार संसार के अन्य पदार्थ भी ब्रह्म अर्थात् परमात्मा के ही अंश हैं। पर आत्मा और अन्य पदार्थों में अन्तर इतना है कि आत्मा सर्वव्यापी और सर्वज्ञाता है और उसमें अपने वास्तविक स्वरूप परमात्मा को समझने और उसे प्राप्त करने का गुण है जबकि अन्य पदार्थों में यह गुण नहीं है। इस सिद्धान्त के अनुसार जब तक आत्मा अपने वास्तविक स्वरूप परमात्मा को नहीं पहचानती और उसे प्राप्त नहीं कर लेती तब तक वह एक शरीर से दूसरे शरीर में प्रवेश करती रहती है। और जब वह अपने वास्तविक स्वरूप को समझ लेती है और उसे प्राप्त हो जाती है तब वह ऐहिक जीवन से मुक्त हो जाती है। इसी को स्वामी जी मुक्ति कहते थे।

ज्ञान मीमांसा:— स्वामी जी ने ज्ञान को दो भागों में बाँटा है भौतिक ज्ञान एवं आध्यात्मिक ज्ञान। भौतिक ज्ञान के अन्तर्गत इन्होंने वस्तु जगत् के ज्ञान को रखा है। और आध्यात्मिक ज्ञान के अन्तर्गत सूक्ष्म जगत् के ज्ञान और सूक्ष्म जगत् के ज्ञान को प्राप्त करने के साधन मार्गों के ज्ञान को रखा है। वेदान्त के प्रतिपादक शंकर के अनुसार वस्तु जगत् का ज्ञान, असत्य ज्ञान है और सूक्ष्म जगत् का ज्ञान सत्य ज्ञान है। परन्तु विवेकानन्द वस्तु जगत् और सूक्ष्म जगत् दोनों के ज्ञान को सत्य मानते थे। इसका तर्क यह है कि वस्तु जगत् ब्रह्म द्वारा ब्रह्म से निर्मित है। और ब्रह्म सत्य है तब यह जगत् भी सत्य होना चाहिए, सत्य से असत्य की

उत्पत्ति कैसे हो सकती है। अतः इसका ज्ञान भी सत्य कोटि के ज्ञान में आता है। जहाँ तक ज्ञान प्राप्ति के साधनों की बात है, इस सम्बन्ध में स्वामी जी के विचार स्पष्ट हैं। इनके अनुसार वस्तु जगत् का ज्ञान प्रत्यक्ष विधि और प्रयोग विधि से होता है और सूक्ष्म जगत् का ज्ञान सत्संग, स्वाध्याय और योग द्वारा होता है। योग को तो ये किसी भी प्रकार के ज्ञान प्राप्त करने की सर्वोत्तम विधि मानते थे।

मूल्य मीमांसा:- स्वामी जी आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार करते थे और शंकर के इस बात के समर्थक थे कि मनुष्य जीवन का अन्तिम उद्देश्य मुक्ति है, इस संसार के आवागमन से छुटकारा प्राप्त करना है। आत्मा को परमात्मा में लीन करना है। परन्तु वे इस वस्तु जगत् और उसमें मानव जीवन को भी सत्य मानते थे इसलिए वस्तु जगत् में इसे शारीरिक दुर्बलता, मानसिक दासता, आर्थिक अभाव और हीनता की भावना से भी मुक्त कराने पर बल देते थे। इन दोनों प्रकार की मुक्ति के लिए इन्होंने सम्पूर्ण मानव जाति को अध्ययनशील, विवेकशील और कर्मशील होने का उपदेश देते थे। तथा सत्संग, भक्ति एवं योग साधना पर बल दिया है। मनुष्य के आचार विचार के सम्बन्ध में स्वामी जी का स्पष्ट मत है कि मनुष्य को सदैव सत्य का पालन करना चाहिए और दीन-हीनों की सेवा करनी चाहिए। सत्य और सेवा को ये जीवन के आधारभूत मूल्य मानते थे। इनकी अपनी दृष्टि से सत्य वह है जिससे व्यष्टि एवं समष्टि दोनों का हित सधे और असत्य वह है जिससे दोनों का अहित हो। स्वामी जी मनुष्य को ईश्वर का मन्दिर मानते थे और मानव सेवा को सबसे बड़ा धर्म मानते थे। इनके अनुसार मनुष्य को मन, वचन और कर्म से शुद्ध होना चाहिए। अपनी जीविका ईमानदारी से कमाना चाहिए। दीन-हीनों की सेवा करनी चाहिए और इस प्रकार अपने को शुद्ध एवं निर्मल बना कर योग साधना के योग्य बनाना चाहिए। और फिर किसी भी योग मार्ग द्वारा आत्मानुभूति करनी चाहिए।

शिक्षा के लक्ष्य एवं सिद्धान्त

स्वामी जी के शिक्षा के लक्ष्य एवं सिद्धान्त जानने से पूर्व शिक्षा के सम्प्रत्यय को समझ लेना परमावश्यक है। स्वामी जी के अनुसार शिक्षा का अर्थ केवल उन सूचनाओं से ही नहीं है जो बालकों के मस्तिष्क में बलपूर्वक ठूँसी जाती है। उन्होंने लिखा है— “यदि शिक्षा का अर्थ सूचनाओं से होता, तो पुस्तकालय संसार के सर्वश्रेष्ठ संत होते तथा विश्वकोष ऋषि बन जाते। स्वामी जी के अनुसार— शिक्षा उस सन्निहित पूर्णता का प्रकाश है, जो मनुष्य में पहले से ही विद्यमान है।” स्वामी जी शिक्षा द्वारा मनुष्य को लौकिक एवं पारलौकिक दोनों जीवनों के लिए तैयार करना चाहते थे। इनका विश्वास था कि जब तक हम भौतिक दृष्टि से सुखी एवं सम्पन्न नहीं हो जाते तब तक भक्ति, ज्ञान, कर्म एवं योग ये सब कल्पना की वस्तु है। लौकिक दृष्टि से इन्होंने नारा दिया— ‘मूढज जीज मकनबंजपवद इल्लूपबी बीतंबजमत पे वितउमकए जतमदहजी वउपदक पे पदबतममकए जीम पदजमससमबज पे मगचंदकमक दक इल्लूपबी वदम बंद जंदक वदम वदमे वूद मिमजण इस प्रकार की शिक्षा को ये ‘मनुष्य की निर्माण की शिक्षा’ कहते थे। परन्तु मनुष्य जीवन का अन्तिम उद्देश्य ये अपने अन्दर छिपी आत्मा की अनुभूति ही मानते थे, पारलौकिक दृष्टि से इन्होंने उद्घोष की कि शिक्षा मनुष्य की अन्तर्निहित पूर्णता की अभिव्यक्ति है।” इनकी दृष्टि से जो शिक्षा यह दोनों कार्य करती है, वही वास्तविक शिक्षा है।

स्वामी जी मनुष्य के भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों रूपों को वास्तविक मानते थे, सत्य मानते थे। इसलिए मनुष्य के दोनों पक्षों के विकास पर बल देते थे इनके अनुसार शिक्षा द्वारा मनुष्य का भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों प्रकार का विकास होना चाहिए, जो शिक्षा ये दोनों कार्य कर सके उसे ये मनुष्य के निर्माण की शिक्षा कहते थे। इस हेतु स्वामी जी ने शिक्षा के जिन उद्देश्यों पर बल दिया है उन्हें हम निम्नलिखित रूप में क्रमबद्ध कर सकते हैं।

1. शारीरिक विकास:- स्वामी जी भौतिक जीवन की रक्षा एवं उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति एवं आत्मानुभूति दोनों के लिए स्वस्थ शरीर की आवश्यकता समझते थे। भौतिक दृष्टि से उन्होंने कहा कि इस समय हमें ऐसे बलिष्ठ लोगों की आवश्यकता है जिनकी पेशियां लोहे के समान बलिष्ठ हों और स्नायु फौलाद की तरह कठोर। आत्मानुभूति के लिए इन्होंने ज्ञान योग, कर्मयोग, भक्तियोग अथवा राज योग की आवश्यकता बताया और इसमें से किसी भी प्रकार के योग साधन के लिए स्वस्थ शरीर की आवश्यकता स्पष्ट की। इनकी दृष्टि से शिक्षा द्वारा सर्वप्रथम मनुष्य का शारीरिक विकास ही किया जाना चाहिए।

2. मानसिक एवं बौद्धिक विकास:- स्वामी जी ने भारत के पिछड़ेपन का सबसे बड़ा कारण उनके बौद्धिक पिछड़ेपन को बताया और इस बात पर बल दिया कि हमें अपने बच्चों का मानसिक एवं बौद्धिक विकास करना चाहिए और इसके लिए उन्हें आधुनिक संसार के ज्ञान-विज्ञान से परिचित कराना चाहिए, जहाँ से जो भी अच्छा ज्ञान एवं कौशल मिले उसे प्राप्त कराना चाहिए और उन्हें संसार में आत्मविश्वास के साथ खड़े होने की सामर्थ्य प्रदान करनी चाहिए।

3. समाज सेवा की भावना का विकास:- स्वामी जी ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि— पढ़े लिखे का यह अर्थ नहीं कि अपना ही भला किया जाये, मनुष्य को पढ़-लिखने के बाद मनुष्य मात्र की भलाई करनी चाहिए। इन्होंने भारत की जनता की दरिद्रता स्वयं अपने आँखों से देखा था। ये चाहते थे कि पढ़े-लिखे और सम्पन्न लोग दीन-हीनों की सेवा करें उन्हें ऊँचा उठाने के लिए प्रयत्न करें

समाज सेवा करें। समाज सेवा से इनका तात्पर्य दान या दया से नहीं था, समाज सेवा से इनका तात्पर्य दीन-हीनों के उत्थान में सहयोग करने से था, उठेंगे तो वे स्वयं ही एक शिक्षा द्वारा ऐसे समाज सेवियों की टीम तैयार करना चाहते थे। ये आध्यात्मिक दृष्टि से भी समाज सेवा को बहुत महत्व देते थे। ये मनुष्य को ईश्वर का मन्दिर मानते थे और उसकी सेवा को ईश्वर की सेवा मानते थे।

4. नैतिक एवं चारित्रिक विकास:- स्वामी जी ने यह बात अनुभव की कि शरीर से स्वस्थ, वृद्धि से विकसित, और अर्थ से सम्पन्न होने के साथ-साथ मनुष्य को चरित्रवान भी होना चाहिए। चरित्र ही मनुष्य को सत्यनिष्ठ बनाता है, कर्तव्यनिष्ठ बनाता है। इसलिए इन्होंने शिक्षा द्वारा मनुष्य के नैतिक एवं चारित्रिक विकास पर भी बल दिया है। नैतिकता से इनका तात्पर्य सामाजिक नैतिकता और धार्मिक नैतिकता दोनों से था। और चारित्रिक विकास से तात्पर्य ऐसे आत्मबल के विकास से था जो मनुष्य को सत्य मार्ग पर चलने में सहायक हो, और उसे असत्य मार्ग पर चलने से रोके। इनका विश्वास था कि ऐसे नैतिक एवं चरित्रवान मनुष्यों से ही कोई राष्ट्र अथवा समाज आगे बढ़ सकता है, ऊँचा उठ सकता है।

5. व्यावसायिक विकास:- स्वामी जी ने भारत की दरिद्र जनता को बड़े नजदीक से देखा था, उनके शरीर से झँकती हुई हड्डियों को रोटी, कपड़ों और मकान की माँग करते हुए देखा था। साथ ही उन्होंने पाश्चात्य देशों के वैभवशाली जीवन को भी देखा था और इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि उन देशों ने यह भौतिक सम्पन्नता ज्ञान-विज्ञान और तकनीकी के विकास और प्रयोग से प्राप्त की है। उन्होंने उद्घोष की कि- “कोरे आध्यात्मिक सिद्धान्तों से जीवन नहीं चल सकता, हमें कर्म के हर क्षेत्र में आगे आना चाहिए। इसके लिए इन्होंने शिक्षा द्वारा मनुष्यों को उत्पादन एवं उद्योग कार्य तथा अन्य व्यवसायों में प्रशिक्षित करने पर बल दिया।

6. राष्ट्रीय एकता एवं विश्वबन्धुत्व का विकास:- स्वामी जी के समय हमारा देश अंग्रेजों के अधीन था, हम परतन्त्र थे। स्वामी जी ने अनुभव किया कि परतन्त्रता हीनता को जन्म देती है, और हीनता हमारे सारे दुखों का सबसे बड़ा कारण है। अतः ये जब अमेरिका से भारत लौटे तो उन्होंने भारत की भूमि पर पैर रखते ही युवकों का आह्वान किया- “तुम्हारा पहला कार्य देश को स्वतन्त्र कराना होना चाहिए, और इसके लिए जो भी बलिदान करना पड़े उसके लिए तैयार होना चाहिए” उन्होंने उस समय ऐसी शिक्षा की व्यवस्था की आवश्यकता पर बल दिया, जो देशवासियों में राष्ट्रीय चेतना जागृत करे। उन्हें संगठित होकर देश की स्वतन्त्रता के लिए संघर्षरत करें। परन्तु ये संकीर्ण राष्ट्रीयता के हामी नहीं थे। ये तो सब मनुष्यों में परमात्मा के दर्शन करते थे और इस दृष्टि से विश्व बन्धुत्व में विश्वास करते थे।

7. धार्मिक शिक्षा एवं आध्यात्मिक विकास:- स्वामी जी शिक्षा द्वारा मनुष्य के भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों पक्षों के विकास पर समान बल देते थे। इनका स्पष्ट मत था कि मनुष्य का भौतिक विकास आध्यात्मिकता की पृष्ठभूमि में होना चाहिए और उसका आध्यात्मिक विकास भौतिक विकास के आधार पर होना चाहिए और ऐसा तभी सम्भव है जब मनुष्य धर्म का पालन करे। धर्म को स्वामी जी व्यापक अर्थ में लेते थे। इनकी दृष्टि से धर्म वह है जो हमें प्रेम सीखाता है तथा द्वेष से बचाता है, हमें मानव-मात्र की सेवा में प्रवृत्त करता है और मानव के शोषण से बचाता है और हमारे भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों प्रकार के विकास में सहायक होता है। स्वामी जी मनुष्य को प्रारम्भ से ही ऐसे धर्म की शिक्षा पर बल देते थे। इनकी दृष्टि से ये सब गुण हमारे अद्वैत वेदान्त धर्म में हैं। यह संसार में एकत्व भाव की अनुभूति कराता है और सबसे प्रेम करना सीखाता है। यह सार्वभौमिक धर्म है। इनकी दृष्टि से संसार के कुछ अन्य धर्म भी ऐसी ही शिक्षाएं देते हैं पर उन सब में हमारा भारतीय वेदान्त श्रेष्ठ है। अतः हमें प्रारम्भ से ही उसकी शिक्षा देनी चाहिए। साथ ही बच्चों को जीवन के अन्तिम उद्देश्य भक्ति योग अथवा राजयोग की ओर उन्मुख करना चाहिए। इनकी दृष्टि से वास्तविक शिक्षा वही है जो मनुष्य को भौतिक जीवन जीने के लिए और आध्यात्मिक मुक्ति प्राप्त करने के लिए तैयार करती है।

सारांश

विवेकानन्द एक ओर जहाँ बालक के आध्यात्मिक विकास पर बल देते हैं वहीं दूसरी ओर लौकिक स्मृति के लिए भी तैयार करना चाहते हैं। इसी प्रकार एक महान संत की भाँति स्वामी जी जहाँ एक ओर वसुधैव कुटुम्बकम् के भाव का प्रचार करते हैं वहीं वे दूसरी ओर राष्ट्र को शक्तिशाली बनाने के लिए शक्ति के निर्माण तथा उसके संचय पर भी बल देते हैं। कुछ भी हो स्वामी जी ने मानव जीवन के विभिन्न पक्षों पर अपने विचार व्यक्त किये हैं। उन्होंने बालक के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, व्यावसायिक तथा आध्यात्मिक विकास पर ही बल नहीं दिया अपितु स्त्री शिक्षा जन समुदाय की शिक्षा, तथा धार्मिक शिक्षा आदि अनेक पक्षों की विस्तृत व्याख्या करते हुए मानव के चारित्रिक विकास पर बल दिया। स्वामी जी के शिक्षा-दर्शन पर विहंगम दृष्टिपात करने के पश्चात हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि वे हृदय से आदर्शवादी थे।

श्री अरविन्द आदर्शवादी थे। उनके दर्शन का आधार उपनिषद् का वेदान्त था वे जीवन में आध्यात्मिक साधना, योग तथा ब्रह्मचर्य को विशेष महत्व देते हुए विकास के सिद्धांत में विश्वास करते थे। उन्होंने बतलाया कि विकास का लक्ष्य केवल एक नहीं है और वह है संसार में व्यापक दिव्य-शक्ति अथवा पूर्ण एवं अखण्ड चेतना को प्राप्त करना। श्री अरविन्द का विश्वास था कि विकास का यह क्रम निरन्तर चलता ही रहता है। इस विकास क्रम की एक ऐसी भी स्थिति आती है जब मानव अति-मानसिक स्तर को प्राप्त करके स्वयं अति मानव बन जाता है। उस स्तर पर पहुँचकर मानव ज्ञान से अधिक ज्ञान तथा प्रकाश से अधिक प्रकाश की ओर बढ़ता है। इससे उसे आश्चर्यजनक शान्ति एवं वास्तविक सुख का आनन्द प्राप्त होते हुए सृष्टि के रहस्य तथा व्यापक सत्यता का पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो जाता है। शिक्षा का वास्तविक लक्ष्य मानव में इसी स्थिति के विकास एवं सम्पोषण से सम्बन्धित है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. Behari, Bankey, Sufies, Mystics and Yogies of India. Bharatiya Vidya Bhavan, Bombay, 1962.
2. Chakrabarti, Amiya, and others, Ed. Rabindranath. Calcutta, Book Exchange; 2005.
3. Nikhilananda, Swami, Vivekananda, A Biography. Ramkrishna Vivekananda Centre, New York, 2001.
4. Prasad, Mahadeva, Social Philosophy of Mahatma Gandhi. Vishvavidyalaya Prakashan, Gorakhpur, 1958.
5. Purani, A.B., Sri Aurobindo, Some Aspects of his Vision. Bharatiya Vidya Bhavan, Bombay, 1966.
6. Radhakrishnan, S. and Moore, Charles A. Ed., A Source Book in Indian
7. Roy, Anil Baran, The World Crisis (Sri Aurobindo's vision of the future). George Allen and Unwin Ltd., London, 1947.
8. Schilpp, P.A. Ed., The Philosophy of Sarvepalli Radhakrishnan. Tudor Publishing Company, New York, 1952.
9. Schweitzer, A., Indian Thought and its Development. Tr. Mrs. Charles B. Russell. Henry Colt and Co., New York, 1936.
10. Sharma, D.S., The Master and the Disciple. Sri Ramkrishna Math, Madras, 1947.
11. Singh, Jagannath, Ed., S. Radhakrishnan (Commemoration Volume) Leader Press, Allahabad, 1953.
12. Tagore, Saummendranath, Rabindranath Tagore and Universal Humanism. St. Vaccum Co., Bombay, 1961.
13. Tejasananda, Swami, Swami Vivekananda and his Message. Ramkrishna Mission. Belur Math, Calcutta, 1965.